

शिक्षा के आधार तत्व : प्राचीन भारतीय चिन्तन

- प्रो० कृष्ण बिहारी पाण्डेय

सृष्टि में प्रत्येक निर्माण का एक आधार है। शिक्षा भी उनमें से एक है। मनीषियों का मानना है कि शिक्षारूपी भवन के निर्माण के लिये उत्तम संस्कारों का सुदृढ़ चारित्रिक आधार आवश्यक है। हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में इस तथ्य को नजर-अंदाज किया गया है परिणामस्वरूप राष्ट्र के रूप में आज हम घोर चारित्रिक संकट से जूझ रहे हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी अवसर आने पर वित्त, सत्ता और भोग विलास के आकर्षण का शिकार होकर कर्तव्यच्युत हो जाता है और स्वयं के लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए एवं देश के लिए संकट का कारण बनता है। हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में, जिसे हम गुरुकुल पद्धति या आश्रम पद्धति के नाम से जानते हैं, इस हेतु पर्याप्त चिन्तन है। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में इस चिन्तन का अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलता है। शिक्षा की गुरुकुल परम्परा में चरित्र-निर्माण पाठ्यक्रम का प्रथम एवं अनिवार्य अंग था। आज के परिप्रेक्ष्य में इस विषय पर गंभीर चिन्तन की आवश्यकता है कि हम अपनी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में इस पाठ्यक्रम का समावेश एवं प्रभावी क्रियान्वयन किस प्रकार करें।

शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है। मानव अपने जन्म से लेकर अन्तिम साँस तक कुछ न कुछ सीखता है। पुराणों में तो गर्भ में ही कठिन शस्त्र-विद्या या शास्त्र-ज्ञान ग्रहण करने के दृष्टान्त हैं। किन्तु सामान्य रूप से शिक्षा ग्रहण करने का प्रमुख काल विद्यार्थी जीवन है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने मनुष्य का जीवन काल सौ वर्ष मानते हुए उसे पच्चीस-पच्चीस वर्षों के चार आश्रमों में बाँटा है- ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तथा संन्यास आश्रम। इनमें प्रथम पचीस वर्ष अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम शिक्षा ग्रहण करने के लिए निर्धारित है। जीवन के इस काल खण्ड में व्यक्ति जैसी शिक्षा पाता है उसी के अनुरूप उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

आश्रम पद्धति में उपनयन संस्कार के बाद बालक शिक्षा पाने के लिए किसी गुरुकुल में जाता था। राजा हो या रंक उसे शिक्षा पाने के लिए गुरु के पास जाना ही होता था और शिक्षा पूरी होने तक आश्रम में रहकर सभी प्रकार के अनुशासन का पालन करना होता था। आचार्य एक दीप-स्तम्भ के समान होता था, उसके आचरण के प्रकाश में शिष्यगण चरित्र-निर्माण हेतु मार्ग-दर्शन पाते थे। यह आचार्य वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का वेतनभोगी शिक्षक नहीं होता था, वह अपने आश्रम का प्रधान और समस्त शिष्यों का पालक होता था। आचार्य एवं गुरु-पत्नी दोनों ही शिष्य को अपनी सन्तान जैसा स्नेह देते थे। गुरु-शिष्य के इस सम्बन्ध का अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त (ऋषि-ब्रह्मा, देवता-ब्रह्मचारी) में इस प्रकार वर्णन है-

आचार्य उपनयमानो ब्रह्माचारिणं कृणुते गर्भमंतः।

तं रात्रिस्तिस्र उदरे विभर्ति, तं जातं द्रष्टुं अभिसंयन्ति देवाः॥

अर्थात् "आचार्य ब्रह्मचारी को अपने समीप बुलाते हुए (उपनयन संस्कार करके) उसे अपने (ज्ञान-रूपी शरीर के) गर्भ में धारण करता है उसे तीन रात्रि तक अपने गर्भ में धारण करके रखता है। जब उसका दूसरा (अर्थात् आध्यात्मिक) जन्म होता है, तो उसे देखने के लिए देवगण आते हैं।" आश्रम परिसर ही, उपरोक्त मंत्र में वर्णित गुरु का गर्भ है, जो सर्वत्र गुरु के ज्ञान से व्याप्त है। ब्रह्मचारी, विद्या अध्ययन का सम्पूर्ण काल यहाँ व्यतीत करता था। मंत्र में वर्णित रात्रि (रात्रिस्तिस्र) अन्धकार की अर्थात् अज्ञान-ग्रस्त स्थिति का प्रतीक है। जब तक शिष्य के तीनों प्रकार के अभावों (भावना, विचारणा तथा कायापरक) का निवारण नहीं हो जाता तब तक आचार्य उसे अपने संरक्षण (गर्भ) में रखते हैं।

आचार्य के ज्ञानलोक से जब तीनों प्रकार से तमस् दूर हो जाते थे, तब शिक्षा पूर्ण मानी जाती थी। तत्पश्चात् आचार्य की अनुमति से ब्रह्मचारी आश्रम से विदा लेता था तथा घर जाकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। 'तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः' अर्थात् उसका (दूसरा) जन्म देखने के लिए देवगण एकत्रित होते थे। यहाँ दीक्षान्त समारोह का संकेत मिलता है। देवगण अर्थात् समाज के श्रेष्ठ लोग इस समारोह में सम्मिलित होते थे और ब्रह्मचारी के गुणों के अनुरूप शासन और समाज में दायित्व निर्वहन हेतु उससे निवेदन करते थे।

ब्रह्मचारी के तीन तमस दूर करने हेतु आचार्य उसे किस प्रकार की शिक्षा देता था, इसका वर्णन इस

मंत्र में है-

इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीतान्तरिक्षं समिध पृणाति।

ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेणलोकांस्तपसापिपति।।

अर्थात् “ब्रह्मचारी पृथ्वीलोक, द्यूलोक एवं अन्तरिक्ष लोक को समिधा से (संसार को) सन्तुष्ट करता है। वह समिध, मेखला, श्रम और तप (इन्द्रिय निग्रह) द्वारा पृथिव्यादि लोकों का पोषण करता है।” मंत्र में वर्णित तीन समिधाओं की व्याख्या मनीषियों द्वारा निम्न प्रकार की गई है।

पृथ्वी लोक की समिधा- शरीर के सन्दर्भ में पृथ्वी लोक का तात्पर्य है कटि से नीचे का भाग। अतः पृथ्वी लोक की समिधा का आशय स्थूल ब्रह्मचर्य-पालन से है।

मनीषियों ने ब्रह्मचर्य-पालन को शिक्षा का मूल आधार माना है। दक्ष संहिता में ब्रह्मचर्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है-

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणम् गुह्यभाषणम्।

संकल्यो अध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च।।

एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।

विपरीतं ब्रह्मचर्यं मतदेवाष्ट लक्षणम्।।

अर्थात् “स्मरण, चर्चा, क्रीडा दर्शन, एकान्त में (विपरीत लिंग से) बात-चीत करना, भोगेच्छा, सम्भोग-निश्चय और सम्भोग-क्रिया, ये आठ प्रकार के मैथुन हैं, जिनके विपरीत आचरण करना ही ब्रह्मचर्य है।”

दुर्भाग्य से देश के वर्तमान शिक्षा नियोजक, विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोर-किशोरियों के लिए हठात् यौन-शिक्षा का कार्यक्रम लागू करने के प्रयास में हैं। यौन-शिक्षा के पाठ्यक्रम में ऊपर वर्णित आठों प्रकार के मैथुन हेतु अनुकूल अवसर बनाते हैं। उत्पन्न परिस्थिति में छात्रों के लिए ब्रह्मचर्य का पालन कठिन ही नहीं होगा असंभव हो जाएगा, स्यात् ये नियोजक छात्र-छात्राओं के लिये ब्रह्मचर्य-पालन आवश्यक मानते ही नहीं। उनकी सोच पश्चिमी देशों की वर्जना-विहीन संस्कृति से अनुप्राणित है, तथा प्राचीन भारतीय मनीषियों के चिन्तन की विपरीत दिशा में है।

मनोविज्ञान के अनुसार मूलभूत भौतिक इकाई रेतस् है, जो शरीर की समस्त ऊर्जा का स्रोत है। सभी मनोविकार, जैसे- भोगेच्छा, कामना आदि, इस शक्ति को शरीर से बाहर फेंककर नष्ट कर देते हैं। अनैतिक आचरण इस ऊर्जा को स्थूल रूप में तथा अनैतिक विचार इसे सूक्ष्म रूप में बाहर फेंकते हैं। आत्म संयम रेतस् में निहित ऊर्जा की रक्षा करता है। रेतस् जल से तपस में तेजस में और विद्युत में तथा विद्युत से ओजस में परिष्कृत होकर शरीर को दैहिक बल व ऊर्जा प्रदान करता है तथा मस्तिष्क को शक्ति से भर देता है। ओजस् ही ऊर्ध्वगामी होकर मस्तिष्क को मूल ऊर्जा से अनुप्राणित करता है।

ज्ञान बौद्धिक प्रक्रिया है। यह सफलता पूर्वक सम्पन्न हो, इस हेतु मन को विकारों से बचाये रखना आवश्यक होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने विषयों के चिन्तन से होने वाले दुष्परिणामों की भयंकरता का उल्लेख कर सावधान किया है-

ध्यायते विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधो अभिजायते।।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।²

अर्थात् विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और आसक्ति से विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अविवेक अर्थात् मूढ़ भाव उत्पन्न होता है और अविवेक से स्मरण-शक्ति भ्रमित हो जाती है। स्मृति भ्रमित हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश होने से वह पुरुष अपने श्रेय-साधन से गिर जाता है।”

ज्ञान-प्राप्ति जैसे पवित्र कार्य के लिए जिस प्रबल कार्य शक्ति और अमोघ इच्छा-शक्ति की

आवश्यकता होती है, वह ब्रह्मचर्य-पालन के बिना नहीं प्राप्त हो सकते। संयम और साधना की पीठिका पर ही ज्ञान की साधना संभव है।

द्युलोक की समिधा- इसी प्रकार मंत्र में द्युलोक का आशय शरीर में ग्रीवा से ऊपर के भाग से है। शरीर के इस भाग में हमारा मन(मस्तिष्क) स्थित है। शिक्षा-प्राप्ति की क्रिया में मन की एकाग्रता परम आवश्यक है। मन जितना अधिक एकाग्र होगा, ज्ञान की प्राप्ति उतनी ही प्रचुरता में होगी। किन्तु मन या चित्त अत्यन्त चंचल होता है मन की चंचलता के विषय में गीता में अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से निवेदन किया है-

चंचल हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।³

अर्थात्- “हे कृष्ण ! यह मन बड़ा चंचल, प्रमथन स्वभाव वाला, बड़ा दृढ़ और बलवान है। उसका निग्रह करना मैं वायु को रोकने जैसा अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ।”

जिसके समाधान हेतु भगवान ने उत्तर दिया है-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तुकौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।⁴

अर्थात्- “हे महाबाहो: निःसंदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है।”

मंत्र में वर्णित द्युलोक की समिधा का आशय भी मन पर नियंत्रण से है। ब्रह्मचारी को मन पर पूर्ण नियंत्रण कर उसे ब्रह्म की ओर ले जाने का अभ्यास कराया जाता है।

अंतरिक्ष लोक की समिधा - शरीर में अंतरिक्ष लोक कटि और ग्रीवा के मध्य का भाग माना गया है, जहाँ हमारा हृदय स्थित है। हृदय में उठने वाले भावों पर पूर्ण नियन्त्रण हेतु अभ्यास कराया जाता है। हृदय में किसी भी प्रकार के भाव उठें इसकी अनुमति नहीं रहती अपितु मात्र ऐसे भावों के लिये अनुमति मिलती है जो साधक को ब्रह्म की ओर ले जायें। इसी को अंतरिक्ष लोक की समिधा कहा गया है।

चरित्र के इस सूत्र पाठ्यक्रम का विस्तृत एवं व्यावहारिक स्वरूप महर्षि पतंजलि का अष्टांग योग है, जिसके आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, एवं समाधि ‘यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि,⁵

अष्टांग योग के इन आठ अंगों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है- 1. यम- यह पातंजल योग का पहला अंग है जिसका आशय सार्वभौमिक नैतिक कर्तव्यों का पालन है। ये नैतिक कर्तव्य पाँच हैं-

अहिंसा-मन, वाणी और कर्म से किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न देना।

सत्य-मन में समझे गये के अनुसार ही कथन करना।

अस्तेय- मन से भी किसी के धन आदि वस्तु को बिना उसकी अनुमति के ग्रहण करने की इच्छा न करना।

ब्रह्मचर्य- समस्त इन्द्रियों के निरोध के द्वारा पूर्ण मानसिक पवित्रता से काम-वासना पर संयम रखना।

अपरिग्रह- आवश्यकता से अधिक वस्तुओं, धन आदि का संग्रह न करना।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहः यमाः।⁶

2. नियम- यह योग का द्वितीय अंग है, जिसमें अनुशासन द्वारा चित्त की शुद्धि का विधान है। ये अनुशासन भी पाँच हैं।

शौच- आम्यन्तर तथा बाह्य

संतोष- प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न रहते हुए सभी प्रकार की तृष्णा से मुक्त होना।

तप भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, मान-अपमान, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों को सहन करने की शक्ति जगाना।

स्वाध्याय-वेद, उपनिषद्, योग-दर्शन, गीता आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन एवं प्रणव आदि मंत्रों का जप करना।

ईश्वर-प्रणिधान- फल सहित समस्त कर्म एवं इच्छायें ईश्वर को समर्पित करना।

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।⁷

3. आसन- योग का तीसरा अंग 'आसन' अर्थात् शारीरिक स्थिति है। आसन से स्थिरता, स्वास्थ्य तथा अंग में हल्कापन आता है। स्थिर और सुखकर शारीरिक स्थिति मानसिक संतुलन लाती है और मन की चंचलता को रोकती है।

4. प्राणायाम- प्राणायामः योग का चौथा अंग है। इसका आशय है- श्वास के माध्यम से प्राण-तत्त्व का विस्तरण एवं नियंत्रण।

प्राण स्थूल व सूक्ष्म शक्ति है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। मानव शरीर में इस प्राण-शक्ति का दक्षतापूर्वक संचालन करना, प्राणायाम का लक्ष्य है। प्राणायाम के अभ्यास से मन का नियंत्रण सरलता से हो जाता है, क्योंकि प्राण और मन का घनिष्ठ संबंध है। जिस प्रकार अग्नि के द्वारा धातुओं का मल नष्ट होता है, उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों का मल अर्थात् वासनयें नष्ट होती हैं तथा चित्त शुद्ध होता है। इस प्रकार प्राणायाम के द्वारा ब्रह्मचर्य की धरणा दृढ़ होती है।

5. प्रत्याहार- का अर्थ पीछे जाना या वापस आना।

प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त न होकर चित्त में लीन होती हैं इससे चित्त की चंचलता नष्ट होती है।

6. धारणा- धारणा मन की ऐसी अवस्था है जिसमें लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य कोई विषय साधक के मन में न रहे।

7. ध्यान- धारणा मन के विषय में चित्त व्यवधानरहित निरंतर प्रवाहित होते रहना ही ध्यान है।

8. समाधि- समाधि ध्यान की पराकाष्ठा है। जब साधक, ध्यान और ध्येय एक हो जायें तथा उनकी स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो जाये, उस स्थिति को समाधि कहते हैं।

गुरुकुल परम्परा में ब्रह्मचारी गुरु के आश्रम में ही रहता था। प्रातः जागरण से लेकर दीप-विसर्जन तक उसकी दिनचर्या कठोर अनुशासन के अधीन रहती थी। उसे अष्टांग योग का नित्य नियमित अभ्यास करना होता था। परिणामस्वरूप उसे शरीर और मन पर पूर्ण नियन्त्रण का अभ्यास हो जाता था और वह सुदृढ़ चरित्र का स्वामी बनता था। यही दृढ़ चरित्र ही उसकी समग्र शिक्षा का आधार होता था। ब्रह्मचर्य आश्रम से बाहर आकर शेष जीवन में वह सब प्रकार के दायित्वों का निर्वहन कुशलतापूर्वक करता था तथा सब प्रकार की परिस्थितियों का सामना करने में सक्षम होता था।

अथर्ववेद में इसका उल्लेख निम्न मंत्र में है-

आचार्यो ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी प्रजापतिः।

अर्थात् "ब्रह्मचारी ही आचार्य बनता है और वही प्रजापति (प्रजापालक-रक्षक-शासक) बनता है। ऐसा प्रजापालक ही ब्रह्मानुशासनयुक्त राज्य करता है? विराट् को वश में करने वाला इन्द्र नियन्तक बनता है।"

ब्रह्मचर्णय तपसा राज राष्ट्रं विरक्षति।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्माचारिणमिच्छते।।

अर्थात् "ब्रह्मचर्य एवं तपः शक्ति से ही शासक राष्ट्र की रक्षा करता है। आचार्य भी ब्रह्मचर्य की सामर्थ्य से ब्रह्मचर्य की, आस्था वाले शिष्य की कामना (उनके सृजन का प्रयास) करते हैं।"

वर्तमान शिक्षा पद्धति में हम अपने तरुणों को अनेकानेक विषयों का आधुनिकतम ज्ञान तो प्रदान करते हैं, किन्तु ब्रह्मचर्य एवं तपः साधना द्वारा चरित्र निर्माण का हमारे पाठ्यक्रम में कोई स्थान नहीं है। अतः हमारी आज की शिक्षा बिना नींव का भव्य महल साबित हो रही है, जो काल एवं परिस्थितियों का हल्का झोंका भी नहीं सहन कर पाती। परिणामस्वरूप छात्र-जीवन में शीर्ष पर रहे अनेक डाक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, प्रशासक तथा राजनेता प्रायः भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे मिलते हैं। समय की माँग है कि हम अपने ऋषियों द्वारा प्रणीत शिक्षा के आधार तत्वों को अपनी आज की शिक्षा पद्धति में समुचित स्थान देकर राष्ट्र के लिए चरित्रवान, गुणवान तथा तेजस्वी तरुणों का निर्माण करें।

शोध संचयन

SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)

ISSN 0975-1254 (Print)

RNI No.: DELBIL/2010/31292

**Bilingual journal
of Humanities &
Social Sciences**

Half Yearly

**Vol. 1, Issue 2,
15 July, 2010**

**शिक्षा के आधार
तत्व : प्राचीन
भारतीय चिन्तन**

प्रो० कृष्ण बिहारी पाण्डेय

कुलपति, महात्मा गाँधी ग्रामोदय
चित्रकूट विश्वविद्यालय,
चित्रकूट, सतना (म०प्र०), प्रो.,
रसायन विज्ञान

www.shodh.net

संदर्भ-

1. श्रीमद्भगवद्गीता 2/62
2. श्रीमद्भगवद्गीता 2/63
3. श्रीमद्भगवद्गीता 6/34
4. श्रीमद्भगवद्गीता 6/35
5. पातंजल योग सूत्र 2/29
6. पातंजल योग सूत्र 2/30
7. पातंजल योग सूत्र 2/32

शोध. संचयन

SHODH SANCHAYAN